ढलती उम्र में मन की उठान

प्रफुल्ल कोलख्यान

ढलती उम्र में मन की उठान कोई नई बात नहीं है। केशवदास ने तो 'केशव केशन अस करि जस काहु न कराहिं, चंद्रवदनि, मृगलोचनी बाबा कहि-कहि जाहिं' कहकर अपना दुख प्रकट ही कर दिया था। साहित्यिक कृतियों में इस तरह के उदाहरण सहज ही उपलब्ध हैं। मिथ की बात करें तो यायति के द्वारा अपने पुत्र के यौवन को आत्मार्पित करवाने के, देवव्रत के भीष्म बनने के और इस तरह के कई प्रसंग विख्यात हैं। प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' में भी ऐसे कई प्रसंग और उनके नैतिक-सामाजिक संकेत हैं--- कम-से-कम भोला और नोखेराम से नोहरी के संबंध का प्रमुखता से उल्लेख होना अपने निहितार्थ में अति महत्त्वपूर्ण हैं। ध्यान रहे यह उल्लेख गाँधीदर्शन और दृष्टि से निर्मित बौद्धिक वातावरण में हुआ है; हिंदी पर गाँधीदर्शन और दृष्टि का बौद्धिक दबदबा कैसा था यह मैथिलीशरण गुप्त के यशोधरा काव्य में यशोधरा के चरित्र गठन के प्रसंग से समझा जा सकता है। यह अलग बात है कि इधर खुद गाँधी जी के बारे में कुछ ऐसे तथ्य सामने आ रहे हैं जिनके प्रामाणिक साबित होने से उनके व्यक्तित्व के गढ़न में एक नया मानवीय आयाम जुड़ेगा। कौन कह सकता है कि बौद्ध दर्शन के 'मज्झम निकाय' के बनने में सुजाता के खीर का कोई ऋण नहीं है!

मनुष्य का मन धरती की ही तरह जटिल होता है। सूखी और तपती हुई धरती आषाढ़ की पहली बूँद के स्पर्श से ही नाच उठती है। धरती नित्य यौवना है, मनुष्य का मन निन-नित नूतन होता

है। अनूकूल हवा-पानी मिलते ही मन हरशृँगार की तरह खिल जाता है। इच्छाओं के बीज अनूकूल हवा पानी पाकर वृक्ष बन जाते हैं। ये वृक्ष कल्प वृक्ष की तरह के होते हैं; इसकी छाया में खुद छुपकर पनाह लेनेवाला दूसरों के सामने अधिक बढ़-चढ़कर 'नैतिक सवाल' खड़े करता है। अपनी भौतिक परिस्थतियों के कारण चाँद आसमान से हिल नहीं सकता और कुमुदनी आसमान में जा नहीं सकती! फिर? कुमुदनी के प्राण का अधार पानी चाँद की परछाई के लिए जगह बनाता है। यहीं प्रेम का मन भौतिक स्थितियों की जमीन और जकड़न के यथार्थ से ऊपर उठकर भावना के आकाश और विस्तार के आभास में खिलकर सुमन हो जाता है। मन के सुमन हो जाने को कबीरदास जानते थे, तभी तो कहा था--- 'कुमुदनी जल में बसै चंदा बसै अकास, जो जाहि की भावना सो ताहि के पास।'

ढलती उम्र में मन की उठान को लेकर इधर काफी बहस जारी है। समाज में भी और मीडिया में भी। समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, नैतिक-ज्ञान और समझ के विभिन्न हलकों से इसके पक्ष-विपक्ष में तर्क जुटाये जा रहे हैं और टिप्पणियाँ की जा रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि सभ्यता विकास में किसी बिल्कुल ही नई परिस्थति का जन्म हुआ है--- कुछ के लिए यह मुक्ति का मार्ग है, तो कुछ के लिए पतनशीलता के चरम का प्रारंभ। यह सच है कि सभ्यता विकास के साथ मनुष्य के मनोस्वभाव में भी परिवर्त्तन घटित होता रहता है। कहना न होगा कि इस तरह के परिवर्त्तन बिल्कुल मौलिक तो नहीं होते हैं फिर भी प्रवृत्तियों की आनुपातिक मात्रात्मकता और प्रभावकेंद्रिकता के लिहाज से इसमें बहुत कुछ नया भी होता ही है। ढलती उम्र में मन की उठान को लेकर इधर जारी बहस में नया क्या है? नया है इसमें मीडिया-तत्त्व का, खासकर दृश्य-श्राव्य तत्त्व का जुड़ना। सवाल उठ सकता है कि यहाँ मीडिया तत्त्व से क्या आशय है? ध्यान में होना चाहिए कि मीडिया का प्राण आभास में बसता है। समर्थन और विरोध के आभास को केंद्रित और संगठित कर पूरी तीक्ष्णता के साथ सृजित करने की अंतर्निहित शक्ति मीडिया तत्त्व का आशय है। इस मीडिया-तत्त्व के जुड़ जाने के कारण बहस का अभिमुख कुछ इस प्रकार बनता है कि उपस्थित बहस का विषय जीवन का केंद्रीय और जीवन के अन्य संकायों से निरपेक्ष मुद्दा प्रतीत होने लगता है। यह सभी जानते हैं कि विरोधाभास में विरोध नहीं होता है, विरोध का सिर्फ आभास होता है, लेकिन मीडिया-तत्त्व विरोधाभास का ऐसा वातावरण तैयार करता है जिससे आभास वास्तव में बदलकर हमारे मनस्तत्त्व का हिस्सा बनने लगता है, इस प्रकार हम विषय और बहस दोनों में शामिल हो जाते हैं। इस प्रकार विशेष पर केंद्रित विषय की परिधि में सामान्य समाहित हो जाता है। सामान्य को उस विशेष के चरित्र से नत्थी कर विचार प्रारंभ हो जाता है। कला माध्यमों से जुड़कर यह प्रक्रिया और शक्तिशाली हो जाती है।

ढलती

उम्र में होनेवाला प्रेम जैसा प्रगाढ़ संबंध लोगों के मजाक और चुहल का विषय बनता है। प्रेम के समाजशास्त्र पर गौर करने के पहले समाज के प्रेमशास्त्र पर भी विचार किया जाना जरूरी है। राधा-कृष्ण, शकुंतला और दुष्यंत, आदि कभी हुए हों या नहीं हुए हों लेकिन उनके और उनके जैसे होने की चाह के समाज में होने के उदाहरण भरे-परे हैं। इसके बावजूद, मोटे तौर पर यह मान लेना चाहिए कि हमारी सभ्यताने प्रेम विमुख और भोग प्रमुख समाज ही गढ़ा है--- वैयिक्तक स्तर पर भी सामाजिक स्तर पर भी। प्रेम सबसे बड़ी सनसनी है। किन्हीं दो लोगों के बीच का मनो-शारीरिक अभिमुखी संबंध हमें अस्थिर कर देता है। उसकी यह विमुखता कभी नैतिकता का बाना ओढ़कर सामने आती है तो कभी धर्म और कानून का बाना ओढ़कर। संविधान की सहमति के बावजूद प्रेम करनेवालों का हत्या और आत्महत्या की त्रासदी का सामना करना पड़ रहा है; कभी जाति के नाम पर, कभी खानदान के नाम पर, कभी धन और धर्म के नाम पर। ऐसा नहीं कि भारत के या दुनिया के सभी समाज इस मामले में एक ही तरह के हैं, उनमें अंतर है और इसी प्रकार की सामाजिक लक्ष्मण रेखाओं के होने के बावजूद यह अंतर है। नैतिकता, सामाजिक सुरक्षा, वैयिक्तक सुरक्षा, सामुदायिक समरसता, पारंपरिकता, पारिवारिक सामंजस्य और न जाने कितने तो पक्ष हैं जिनका सामना प्रेम करनेवलों को करना पड़ता है। प्रेम करनेवालों के सामने अर्जुन की जैसी स्थिति होती है--- प्रेम के विरुद्ध अपने परिजनों को खड़गहस्त देख विषादयोग से आच्छन्न उसके मन से एक ही बात निकलती है कि इतने लोगों के विरोध में जाकर पाया गया संबंध किस काम का होगा! जैसे अर्जुन का मन कुटुंबों की हत्या के बाद मिलनेवाले जय के प्रति विषाद से घिर गया था। यहाँ पर एक खतरा है। खतरा यह कि चाहे जैसे भी हो, विवाह को प्रेम की अनिवार्य और अंतिम परिणति मान लिये जाने का खतरा। जो भी हो, सही बात तो यह है कि वर्चस्वशील मनोवृत्ति के कारण हमें ईर्ष्या भी होती है और डर भी होता है; आत्महीनता और पराजय-बोध के होने से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। ईर्ष्या, डर, आत्महीनता और पराजय-बोध से उत्पन्न मजाक और कुत्सा नैतिकता, सामाजिक सुरक्षा, वैयिक्तक सुरक्षा, सामुदायिक समरसता, पारंपरिकता, पारिवारिक-सामंजस्य के ओट में प्रकट होती है। यह सच है कि प्रेम में छल का खतरा बहुत रहता है। लेकिन छल का खतरा कहाँ नहीं होता है? विवाह और परिवार के परिसर में छल के लिए क्या कम जगह होती है? प्रेम को समझना वैसे भी मुश्किल काम है लेकिन इस छल को समझे बिना ढलती उम्र में होनेवाले प्रेम के मनस्तत्त्व को समझना असंभव ही है। बाल-विवाह को रोकने के बारे में कानून है; इसके अनुपालन में चाहे जितनी भी त्रुटि हो, मगर कानून है। वृद्ध-विवाह या वैवाहिक संबंध बनानेवलों की उम्र में अंतराल की सीमाओं का कोई कानूनी प्रावधान नहीं है। हाय-तोबा ढलती उम्र में

विवाह को लेकर उतना नहीं है जितना प्रेम को लेकर है। सच्ची बात तो यह है कि ढलती उम्र हो या चढ़ती उम्र हो प्रेम को लेकर (हम) लोग सहज नहीं रह पाते हैं।

सपने

हमेशा भविष्य के असमानी कोख में पलते हैं और ढलती उम्र में भविष्य का प्रक्षेत्र तेजी से संकुचित होता जाता है। एक के सामने छोटा-सा अतीत और बड़ा-सा भविष्य होता है तो दूसरे के सामने बड़ा-सा अतीत और छोटा-सा भविष्य होता है। ऐसे में एक सपने की तरह प्रेम का उगना आश्चर्य में डालनेवाला तो होता ही है। इसमें कौतूहल के लिए चाहे जितनी जगह हो कुत्सा के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए। कुत्सा से यह समझना आसान नहीं है कि जब केश की सुरमई चमक खोने लगती है, दाँत में माँद बनने लगते हैं, हर नागवार बात पर भिंच जानेवाला जबड़ा ढीला पड़ने लग जाता है, आँख की ज्योति क्षीण होने लग जाती है, कभी पास नहीं दीखता है तो कभी दूर नहीं, हसरतें दम तोड़ने लग जाती हैं, सपनों के रंग काफूर होने लग जाते हैं, आशा की डोर के रेशे टूटने लग जाते हैं, आगे बढ़ने का रंग भरा साहस और मनोबल देनेवाला कसाव ढीला होने लग जाता है, हथेली पर सजी मेंहदी समेत सपनों को अँजुरी में समेट सिसकते हुए बिदा हो चुकी होती हैं या विदा होने को होती हैं बेटियाँ, पसीने की पोटली सँभाले, अपने गीत-कवित्त लिये सपना सजाने चल देते हैं बेटे, पुरानी पड़ जाती है साइकिल, बहुत मुश्किल से घूमता है जिसका हाँफता हुआ चक्का, जिंदगी के झोले की सीवन उघड़ने लग जाती है, सौदा और सौगात बिखरने लग जाते हैं; जिंदगी का मेला उठने लगता है, पूजा और पुजारी, फूल और प्रसाद सभी बासी पड़ने लग जाते हैं, देवता रूठ जाता है तब क्यों किसी 'बूढ़े मन' में उग आता है प्रेम--- क्यों पुलिन पर प्रियतमा का इंतजार बढ़ जाता है। यह समझना भी आसान नहीं है कि जिसकी जिंदगी के सपनों की पंखुड़ियों का खुलना अभी बाकी हो, जिसके केश में सुकुमार चमक का बसेरा हो, जिसके दाँत देखकर मोती को अपना होना सार्थक लगता हो, हर मंजिल पर जिसके फतह का हौसला जवान हो, जिसकी आँख में उतरने को बेचैन हो दूधिया चाँदनी, जिनकी हसरतों में रोज नये पर लगते हों, जिनके सपनों में रंगों का सजना अभी बाकी हो, जो अपने समय समाज की आशा बनी हुई हो, जिसके मन में आगे बढ़ने का रंग भरा भरपूर साहस और मनोबल हो, जिसकी हथेली पर सजी मेंहदी सजने के फिक्र और इंतजार में तेजी से बूढ़े हो रहे हों माता-पिता, जिसकी साइकिल का चमचमाता हुआ चक्का अभी दूर्वादल से हरे मैदान के बाहर जिंदगी की काली पिच पर चढ़ा भी न हो, जिसकी जिंदगी का मेला का लगना अभी बाकी हो, जिसके सामने अभी पूजा और पुजारी, फूल और प्रसाद का अर्थ खुलना भी बाकी हो, क्यों ऐसे किसी 'नवांकुर मन' में

उग आता है ढलती उम्र के व्यक्ति के प्रति प्रेम--- क्यों कोकिला जली डाल पर कूकने लग जाती है!

जब चारों तरफ अँधेरा हो, आशा की किरणें किसी बनैले पशु की खौफनाक चमक मे बदल जाये, तब किसी के अतीत में अपने भविष्य को और किसी के भविष्य में अपने अतीत को समाहित कर देने का जोखिम उठा लिया जाता है। मनोविज्ञान और समाजशास्त्र चाहे अपना जो भी सिद्धांत बनाये जीवन हमेशा उससे आगे ही चलता है। बेमेल उम्र का प्रेम उतनी बड़ी चिंता का कारण नहीं होना चाहिए--- प्रेम तो प्रेम है। बड़ी चिंता चिंता का कारण होना चाहिए समाज के मन में वास्तविक प्रेम के लिए जगह का कम होते जाना और उससे उत्पन्न सामाजिक ब्लैक होल में दुनिया के खूबसूरत एहसासों का खोते जाना।

इस सामग्री के उपयोग के लिए लेखक की सहमति अपेक्षित है।
सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान